Introduction

:: प्राक्कथन ::

कहीं पढ़ा हुआ यह दोहा स्मृति में कौंध रहा है :---

"कंटीले इस जग-वृक्ष पर, सुन्दर दो ही डार ।
अनुशीलन साहित्य का, गुणीजनों का प्यार ।।"

जिस प्रकार धर्म मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाने के लिए है, ठीक उसी प्रकार साहित्य भी मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाने के लिए है । "साहित्य" शब्द में ही "सहित" शब्द निहित है, अर्थात, साहित्य सदैव "हित" से संयुक्त रह रहता है । साहित्य व्यक्ति, समाज, देश और जाति के उत्थान के लिए होता है । साहित्य के बिना समाज की स्थिति संभव नहीं । पिछड़े-से-पिछड़े और अशिक्षित समाज का भी अपना साहित्य होता है, जो उसके संस्कार और स्वभाव को मांजता है । कहा भी गया है —" साहित्य संगीत कला विहीनः । साक्षात, पशु पुच्छ विषाणहीनः ।"

अपने व्यापकतम, अर्थों में साहित्य तो समूचे लिखित वस्तु को प्रकट करता है, किन्तु अपने रूढ़ अर्थों में वह काव्य का पर्याय है । यहां इस बात का भी ध्यान रहे कि काव्य केवल कविता नहीं, अपितु गद्य-पद्य के तमाम विविधलक्षी साहित्य-रूपों को अभिव्यक्त करता है । इस प्रकार व्यापकतम, अर्थों वाला साहित्य काव्य और शास्त्र में विभक्त हुआ है । शास्त्र का उद्देश्य ज्ञान देना है । काव्य का उद्देश्य है मानव-भावनाओं को परिचालित करना । काव्य भी ज्ञान देता है, किन्तु रसयुक्त आनंद के साथ ।

अतः प्रारंभ से ही साहित्य के प्रति मेरे मन में एक विशेष लगाव था । परंतु हमारे समाज में शिक्षा को लेकर अलग-अलग खाने बने हुए हैं । विचित्र प्रकार की खामखयाली यहां प्रवर्तमान है । फलतः हाईस्कूल की शिक्षा में विज्ञान तरह (Science-Stream) के कारण मेरे दो वर्ष खराब हुए या बरबाद हुए । प्रशासनिक भ्रान्ति तथा अव्यवस्थापन एवं लापरवाही के कारण केवल पन्द्रह दिन पूर्व मुझे ज्ञात हुआ कि मैं 12 वीं कक्षा

के सामान्य-प्रवाह में बैठ सकता हूं । पन्द्रह दिनों की तैयारी में 12 वीं उत्तीर्ण किया, अतः प्रतिशत मनोनुकूल नहीं आये । यह बात सन् 1989 की है । उसके बाद तो मैंने कला-संकाय (Faculty of Arts) में प्रवेश लिया और अपने मनोनुकूल दिशा मिल जाने पर अच्छे नंबरों से पास होता गया । बी.ए. हिन्दी साहित्य को लेकर प्रथम कक्षा में उत्तीर्ण किया । हिन्दी साहित्य में ही एम.ए. सन् 1994 में 58.7 प्रतिशत अंकों के साथ किया । एम.ए. में मेरा विशेष-पत्र, "उपन्यास" ही था । मैं "उपन्यास" में ही पी-एच.डी. करना चाहता था, परन्तु देसाई साहब के अन्तर्गत जगह नहीं थी, अतः मुझे दो-तीन साल प्रतीक्षा करनी पड़ी । इस प्रतीक्षा-काल में मैंने ६ एक-दो छोटे-मोटे व्यावसायिक कोर्स तथा बी.एड. किया । अंततः "दलित चेतना से अनुप्राणित हिन्दी उपन्यास : एक अनुशीलन" को लेकर प्रो. देसाई साहब के अन्तर्गत मेरा नाम पी-एच.डी. के लिए पंजीकृत हो गया ।

हिन्दी के नवजागरण --- जिसे कुछ विद्वान "इण्डियन रेनेसां" कहते हैं— प्रेरित सामाजिक-धार्मिक आन्दोलनों ने आधुनिक साहित्य की पृष्ठभूमि का निर्माण किया है । हिन्दी की उपन्यास विधा इन सबमें अधिक प्रभावित है । इसके कारण उपन्यासकारों को अनेक नये विषय मिले हैं । औपन्यासिक-विधा के द्वितीय सोपान में ही हिन्दी को प्रेमचन्द जैसा एक समर्थ दृष्टि-संपन्न लेखक सम्प्राप्त होता है । कहना न होगा कि प्रेमचंद ने आधुनिक हिन्दी साहित्य को -- विशेषतः कथा-साहित्य को-- संपन्न एवं समृद्ध किया है । प्रेमचन्द-अनुप्रेरित जो कथा-प्रवाह बहा, उसमें मुख्यतया दो साहित्यिक विमर्श उपलब्ध होते हैं -- नारी-विमर्श और दलित-विमर्श । कमोवेश रूप से ये दो साहित्यिक विमर्श वैश्विक साहित्य-प्रवाह में भी दृष्टिगोचर होते हैं ।

बहुत से विद्वानों के अभिमत से "उपन्यास" विरोध और विद्रोह का साहित्य (लिटरेचर आफ डिसकार्ड) है । भारतीय नारी तथा दलितों का जो परा-पूर्व से शोषण हो रहा था । अपमान, अत्याचार और अन्याय की बृहद् वैतरणीत्रयी-- संतापत्रयी (ट्रिओ-ट्रेजेडी) से उन्हें रात-दिन गुजरना पड़ रहा था, अतः औपन्यासिकों के शोषण-विरोधी मुहिम में ये दो मुद्दे सर्वाधिक रूप से उभरकर आते हैं । फलतः प्रेमचन्द, प्रेमचन्द स्कूल के लेखक तथा प्रेमचन्दोत्तर काल के अनेक लेखकों ने दलित चेतना से उत्प्रेरित होकर अनेक उपन्यासों की रचना की है । प्रेमचन्द के प्रायः सभी उपन्यासों तथा अनेक कहानियों में यथार्थवाद समर्थित दलित-चेतना की उपस्थिति दर्ज हुई है । अतः मेरा यह शोध-विषय आधुनिक, युग की आकांक्षाओं और विचार-दृष्टि के अनुरूप है । मैंने इस प्रबंध को निम्नलिखित सात अध्यायों में विभक्त किया है :----

(1) विषय प्रवेश
(2) प्रेमचन्दकाल के दलित-चेतना संपन्न उपन्यास
(3) प्रेमचन्दोत्तरकाल के दलित-चेतना संपन्न उपन्यास
(4) स्वातंत्र्योत्तरकाल के दलित-चेतना संपन्न उपन्यास
(5) दलित-जीवन की समस्याएं --- 1
(6) दलित-जीवन की समस्याएं --- 2
(7) उपसंहार

प्रथम अध्याय "विषय-प्रवेश" का है । उसमें आलोच्य-विषय की पृष्ठभूमि को विश्लेषित करने का उपक्रम रखा गया है । यहां दलित-चेतना के तात्पर्य को रेखांकित करते हुए उसके कतिपय पहलुओं को निरूपित किया गया है । यह चेतना लेखक की अपनी दृष्टि में हो सकती है । बिना इसके वह कदापि इस विषय की ओर प्रवृत्त ही नहीं होगा । लेखक में यह चेतना एक विशिष्ट दृष्टि-संपन्नता के कारण भी हो सकती है और अपने वैयक्ति-अनुभव-संपदा से संवलित संवेदना के कारण भी । पात्रों में यह चेतना लेखकीय

संवेदना का अनुगमन करती है । अंततः यह चेतना उपन्यास के समूचे परिवेश में व्याप्त हो जाती है । इस अध्याय में दलित चेतना को व्याख्यायित करते हुए उसके विभिन्न स्तरों को उद्घाटित किया है । दलित चेतना के मूल में हमारी अन्याय एवं असमानता मूलक समाज-व्यवस्था रही है, अतः यहां दलितों पर थोपी गयी नाना प्रकार की नियोग्यताओं (डिसएबिलिटीज़) को सप्रमाण रखा गया है । दलितों के विभिन्न वर्ग और उनमें परिव्याप्त जातिगत संस्तरण (हायार्की) को भी यहां विश्लेषित किया गया है । यहां अनुसूचित-जाति तथा अनुसूचित जन-जाति की विभिन्न समस्याओं तथा उनके निवारण हेतु जो संस्थागत या सरकारी कार्य हुए हैं उनका भी जायजा लिया है । दलितों के उत्थान के लिए जो प्रयत्न वैयक्तिक स्तर पर हुए हैं उनको भी नज़रन्दाज नहीं किया गया है । ज्योतिबा फूले, महात्मा गांधी, डॉ० भीमराव रामजी आंबेडकर, सर सयाजीराव गायकवाड, कोल्हापुर स्टेट के महाराजा, ठक्करबापा प्रभृति महानुभावों के योगदान को ससम्मान निरूपित किया गया है । अध्याय के अन्त में निष्कर्ष तथा सन्दर्भानुक्रम दिए गए हैं ।

हिन्दी उपन्यास को उसका वास्तविक गौरव प्राप्त हुआ मुंशी प्रेमचन्द द्वारा, अतः औपन्यासिक विकास-क्रम को निरूपित करने की बात जब भी उठती है, प्रेमचन्द को केन्द्र में रखा जाता है; यथा -- पूर्व प्रेमचन्द-काल, प्रेमचन्दकाल, प्रेमचन्दोत्तरकाल, स्वातंत्र्योत्तर काल आदि । अगर जिन दो साहित्यिक-विमर्शों का उल्लेख किया गया है, उनमें से नारी-विमर्श का प्रारंभ तो प्रेमचन्दपूर्वकाल से ही हो गया था । "भाग्यवती" नारी चेतना को लेकर लिखा गया प्रथम उपन्यास है । परन्तु दलित-विमर्श की बात प्रेमचन्दकाल में उठती है । अतः दूसरे अध्याय में प्रेमचन्द काल के दलित-चेतना संपन्न उपन्यासों की चर्चा की गई है, जिनमें पांडेय बेचन शर्मा "उग्र" द्वारा प्रणीत "बुधुआ की बेटी", प्रेमचन्द द्वारा प्रणीत "कर्मभूमि", "रंगभूमि, "गबन", "गोदान" आदि उपन्यास ; सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" द्वारा

प्रणीत "अलका", "निरूपमा", "कुल्लीभाट" आदि उपन्यास तथा सियाराम शरण गुप्त द्वारा प्रणीत "अंतिम आकांक्षा" आदि उपन्यास मुख्य हैं । इसी अध्याय में प्रेमचन्दयुगीन दलित-चेतना वाले उपन्यासों पर विहंगम दृष्टिपात भी किया गया है । अध्याय के अन्त में निष्कर्ष तथा सन्दर्भानुक्रम प्रस्तुत किए जायेंगे ।

तृतीय अध्याय में प्रेमचन्दोत्तरकाल के दलित-चेतना से संपृक्त उपन्यासों की विवेचना प्रस्तुत हुई है । इन उपन्यासों में आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत "गोली", "बगुला के पंख", "ह्र उदयास्त" आदि उपन्यास ; रांगेय राघव कृत "कब तक पुकारूं ?" ; सरकार तुम्हारी आंखों में " (पक्ष× पाण्डेय बेचन शर्मा"उग्र") , "जुनिया" (गोविन्द वल्लभ पंत) ; "देवदासी" (नरसिंहराम शुक्ल) ; "गरीब" (जगदीश झा विमल) ; "जमींदार " (डॉ. इन्द्र विद्यावाचस्पति) ; "कभी-न-कभी" (वृन्दावनलाल वर्मा) ; "अधूरी नारी " (उदयराज सिंह) ; "पीले पत्ते " (कुंवर कृष्णकुमार - सिंह) ; "मालिन" (साधुशरण पुष्प) आदि उपन्यासों को लिया गया है । हल्के-मामूल अध्याय के अन्त में निष्कर्ष तथा सन्दर्भानुक्रम दिये गये हैं ।

हमारे साहित्येतिहास में स्वातंत्र्योत्तर काल के साहित्य को एक विशेष दृष्टि से परीक्षित किया गया है । भारत के लोगों में स्वाधीनता को लेकर एक संमोहन की स्थिति थी, विशेषतः ग्रामीण और पिछड़े तबके के लोगों में । परन्तु आजादी के बाद देखा गया कि पुनः उन्हीं सामंतवादी ताकतों ने सत्ता-स्थानों पर कब्जा कर लिया । स्वाधीनता के दौर में तृणमूल (Grass-root) रूप में रहने वाले लोग, कैसे केवल "घवन्निया मेम्बर्स" मात्र बनकर रह गये , और अंग्रेजों के जमाने में उनके पिट्ठू जो थे , वे कैसे पुनः पैसों तथा गुण्डागर्दी (Money-Power & Mussle-Power) के द्वारा सत्ता-स्थानों में काबिज हो गये उसका बड़ा ही संवेदनापूर्ण चित्र हमें रेणु के मैला आंचल" में मिलता है । अभिप्राय यह कि स्वाधीनता के कुछ ही वर्षों बाद लोगों का उससे "मोहभंग" होता है । यह

"मोहभंग" नाना स्तरों पर हुआ है । मोहभंग की यह स्थिति दलित-तबकों में भी पायी जाती है । दूसरी ओर नवजागरण काल से लेकर दलित-चेतना जो विकसित हो रही है, और उसके कारण जो एक नया चैतन्य इस वर्ग में पाया जाता है है । इस चैतन्य के कारण ही उन्हें कहीं-कहीं दबाया या क्रूरतापूर्वक कुचल दिया गया है । इन सबको स्वातंत्र्योत्तर काल के साहित्य में अभिव्यक्ति मिली है ।

चतुर्थ अध्याय में उक्त चेतना-संपन्न उपन्यासों को आलोच्य-विषय के केन्द्र में रखने की चेष्टा की गई है । ऐसे उपन्यासों में "जल टूटता हुआ"- डॉ0 रामदरश मिश्र, "सूखता हुआ तालाब" डॉ. रामदरश मिश्र, "सागर - लहरे और मनुष्य" उदय शंकर भट्ट , "मैला आंचल" रेणु, "नाच्यों बहुत गोपाल" अमृतलाल नागर, "धरती धन न अपना " जगदीश चन्द्र , "एक टुकडा इतिहास" गोपाल उपाध्याय , "महाभोज" मन्नू भण्डारी , "अलग-अलग वैतरणी" डॉ. शिवप्रसाद सिंह , "रेतीला मोती" राजकुमार त्रिवेदी , "पुराण-पुरूष " डॉ. विवेकीराय , "टपरे वाले " कृष्णा अग्निहोत्री, "छाको की वापसी" बदी उज्जमां, "अमीना" नरेन्द्र कोहली , "नदी का शोर" डा. आरिग पूडि , "अभिशाप" डा. आरिगपूडि , "सबसे बड़ छल" , "सोनभद्र की राधा" तथा सीताराम नमस्कार" मधुकर सिंह , "छोटी बहू" दयाराम मिश्र , मंगलोदय" ब्रजभूषण , "नदी के मोड़ पर " दामोदर सदन , "मोतिया" , "एक अकेला" रामकुमार भ्रमर , "नयी बिसात " श्रीचन्द अग्निहोत्री , " "बसन्ती" भीष्म साहनी , "नाग वल्लरी" शैलेश मटियानी , "एकलव्य" चन्द्रमोहन प्रधान, आदि मुख्य हैं । इनके अतिरिक्त "रामकली " गोपुली गफूरन, "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई" शैलेश मटियानी , "शेखर एक जीवनी" अज्ञेय , "आधा गांव " डॉ. राही मासूम रज़ा , "आग पानी आकाश " रामधारी सिंह दिवाकर , "जुलूस" रेणु , "सीधी सच्ची बातें" , "सबहिं नचावत राम गुसाईं" भगवती चरण वर्मा , "बीज" अमृतराय , "परती परिकथा" रेणु , "पत्थर के आंसू", "हजार घोड़ों का सवार " यादवेन्द्र शर्मा ,

"सती मैया का चौरा" भैरव प्रसाद गुप्त , "लोहे के पंख " हिमांशु श्रीवास्तव, "मानव दानव" मन्मथनाथ गुप्त , "महापात्र" विश्वेश्वर , "यथा प्रस्तावित" गिरिराज किशोर , आदि उपन्यासों की भी संक्षेप में यथास्थान चर्चा की गई है ।

पंचम तथा छठ अध्याय में दलित-जीवन की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक , नैतिक, संस्कारगत, शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक प्रभृति समस्याओं, उनकी आकांक्षाओं, उनकी अपनी कमजोरियों इत्यादि को विश्लेषित करने का उपक्रम है । ये समस्याएं परस्पर अनुस्यूत हैं । उनकी कमजोरियों और बुराइयों की भी एक ऐतिहासिक , सामाजिक पृष्ठभूमि रही है । समाजशास्त्रीय दृष्टि से उनको भी विश्लेषित और रेखांकित किया जाएगा ।

अंतिम अध्याय "उपसंहार" का है । समग्र शोध-प्रबंध का समग्रावलोकन करते हुए यहां कतिपय निष्कर्षों को उकेरने का एक वैज्ञानिक अभिगम रहा है । अंत में प्रबंध की उपलब्धियों तथा उसके भविष्यत, विकास की संभावनाओं को रेखांकित किया जाएगा । शोध-प्रबंध के अन्त में "सन्दर्भिका (Bibliography) के अन्तर्गत आधारभूत या उपजीव्य ग्रन्थों की सूची सहायक-ग्रन्थों की सूची तथा पत्र-पत्रिकाओं की सूची को यथासंभव वैज्ञानिक तरीके से तथा अकारादि क्रम से रखा जाएगा ।

अपनी बुद्धि-प्रतिभा, शक्ति-मति तथा सामर्थ्य की सीमाओं से पूर्णतया अवगत हूं * अतः विद्वज्जनों तथा इस क्षेत्र के अध्येताओं के प्रति मैं प्रथमतः नतमस्तक हूं । यदि मेरे इस लघु प्रयास से औपन्यासिक आलोचना, साहित्यिक समझदारी (Literary-Conscience) , शोध-अनुसंधान तथा दलित-चेतना के कतिपय आयाम उद्घाटित होते हैं और भविष्य के अध्येता तथा अनुसंधित्सु इससे किंचितमात्र भी दिशान्वित होते हैं, तो मैं अपने इस सारस्वत परिश्रम को सार्थक समझूंगा ।

मेरा जन्म सन् 1967 में जिला बड़ौदा, ता. डभोई के मानपुरा गांव में हुआ था । प्रायः पिछड़ी जातियों के बच्चों की भांति मेरी जन्म-तिथि भी जून की प्रथम तारीख है । हमारे परिवेश में इतनी निरक्षरता तब पाई जाती थी कि निश्चित जन्म-तिथि या समय दर्ज करने का सवाल ही नहीं उठता । ऐसे माहौल में पले-बढ़े होने के उपरांत भी यहां तक की मंजिल जो सर कर सका हूं, उसके पीछे मेरे माता-पिता , सोमाभाई तथा नंदाबहन (दोनों अशिक्षित) के आशीर्वाद, संस्कार तथा शिक्षा-अभिप्सा कारणभूत एवं बीजरूप हैं, अतः सर्वप्रथम मैं उनके समक्ष अपना मस्तक झुकाता हूं । माता-पिता के ऋण से उऋण होना तो सौ जन्मों में भी संभव नहीं , तथापित उनके द्वारा आकांक्षित प्रस्तुत कार्य को संपन्न करते हुए मैं किंचित् संतोष का अनुभव कर रहा हूं । मेरी अभी तक की शिक्षा में मेरे जेष्ठ-बंधु गोविंदभाई -- जो बड़ौदा - स्थित आई.पी.सी.एल. में सेवारत हैं -- तथा माता-तुल्य भाभी जी का भी बहुत बड़ा योगदान है । अतः इस क्षण उनका स्मरण भी स्वाभाविक ही कहा जायेगा । इस पथ पर अग्रसरित होने में मुझे निरंतर मेरी धर्मपत्नी उषा तथा मेरे सास-ससुर श्री जीवणभाई और श्रीमती नंदाबहन का प्रोत्साहन मिलता रहा है । इनके अतिरिक्त और भी कई मित्र और गुरू-भाई-भगिनियों का साथ-सहयोग मुझे प्राप्त हुआ है । इन सबके प्रति मैं अपने हृदय से आभार व्यक्त करता हूं ।

हमारी परंपरा में गुरू को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है । गुरू ही साहब है । प्रोफेसर डॉ. पारूकान्त देसाई मेरे लिए विद्या-गुरू और चेतना-गुरू दोनों हैं । डॉक्टर साहब की शिष्य-वात्सलता विश्वविद्यालय के प्रांगण में जग-जाहिर है । उनके बहुमूल्य निर्देशन में ही यह कार्य संपन्न हो रहा है, अतः उनके प्रति मैं पूर्णतया श्रद्धावनत हूं ।

मेरे इस शिक्षा-यज्ञ में मुझे हिन्दी विभाग के कई वर्तमान एवं निवर्तमान प्राध्यापकों का मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद प्राप्त हुए हैं । प्रो. डॉ. मदनगोपाल गुप्त, डा. रमणलाल पाठक, डा. रमणलाल तलाटी, डा.

डा. प्रतापनारायण झा, डा. अक्षयकुमार गोस्वामी, डा. भगवानदास कहार, डा. अनुराधा दलाल, डा. बंशीधर शर्मा, डा. आर.जी.शर्मा. , डा. अहिरे आदि उनमें मुख्य हैं । उन सबके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं ।

इस कार्य हेतु मुझे गुजरात सरकार से 30,000 /- रूपये का अनुदान प्राप्त हुआ है । अतः समाज-कल्याण विभाग के अधिकारी महोदय तथा विभागाधीन श्री राणा साहब तथा श्री जे.एन. परमार साहब, कला-संकाय के श्री त्रिवेदी साहब तथा श्री बीमावाला साहब और श्रीमती कल्पना बहन के प्रति मैं धन्यवाद ज्ञापित करता हूं । इस शोध-प्रबंध के प्रबंधन में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से मैंने अनेकानेक विद्वानों के ग्रन्थों से सहायता ली है । उन सबके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं ।

सारस्वत शोध-कार्य में विद्यागरों-विद्यामंदिरों-पुस्तकालयों का महत्व तो सर्वोपरि है । मैंने इस कार्य के लिए हंसा मेहता लायब्रेरी, सेन्ट्रल लायब्रेरी, आई.पी.सी.एल. लायब्रेरी आदि से लाभ उठाया है । अतः इन पुस्तकालयों के अधिकारियों तथा कर्मचारियों का भी मैं ऋणी हूं और यहां उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा व्यक्त करता हूं ।

यह कार्य तो आलोचना-शोध-अनुसंधान की दिशा में उठाया गया एक कदम मात्र है । मेरी यह कोशिश होगी कि मैं इस दिशा में और आगे बढ़ूँ । उस परम पिता से मेरी यही प्रार्थना है कि मेरा जीवन "अजागल" की तरह व्यर्थ न हो और अपने स्वाध्याय और अनुशीलन के द्वारा उसे यत्किंचित अर्थ देने में सफल रहूं । अंत में कामना करता हूं कि भवानीदादा की निम्न-लिखित पंक्तियों को मैं अपना जीवनादर्श बना सकूं --

"कुछ लिखके सो
कुछ पढ़के सो
तू जिस जगह जागा सवेरे
उस जगह से बढ़के सो ।।

दिनांक :
27-04-2000

विनीत

(नटवरभाई सोमाभाई परमार)